ओ३म्

सन्ध्यादर्पण

वैदिक सन्ध्या के मन्त्रों के शब्दार्थ, व्याख्या
तथा हिन्दी पद्यानुवाद

महर्षि दयानन्द सरस्वती

आचार्या वेदकुमारी घई

ओ३म्

सन्ध्यादर्पण

वैदिक सन्ध्या के मन्त्रों के शब्दार्थ, व्याख्या
तथा हिन्दी पद्यानुवाद

आचार्या वेदकुमारी घई

महर्षि दयानन्द सरस्वती

प्रकाशक

आर्य प्रतिनिधि सभा जम्मू व कश्मीर (पंजीकृत)

वर्तमान कार्यालय – आर्य समाज बक्शीनगर, जम्मू

SANDHYADARPAN

(Vaidik Sandhya ke Mantron Ke Shabdarth,
Vyakhya Tatha Hindi Padyanuvad)

by

Prof. Ved Kumari Ghai

© Author

Publisher

ARYA PRATINIDHI SABHA JAMMU KASHMIR
(REGD.)

Price : ₹ 20

First Edition 2013

Printer
Classic Printers
Bari Brahamana, Jammu

भूमिका

अज्ञानान्धतमोहन्त्रे भ्रमदुर्गविनाशिने।
लोकोपकारिणे तुभ्यं दयानन्दाय मे नमः।।

युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व भारत में देवपूजा के नाम पर कई प्रकार की पूजापद्धतियां प्रचलित थीं जिनमें अनेक देवी देवताओं को नाना प्रकार से रिझाने के प्रयास किये जाते थे। पशुबलि आदि कई कुरीतियां भी अज्ञानवश उन पूजापद्धतियों में सम्मिलित हो चुकी थीं। महर्षि ने वेदोक्त प्रमाणों के आधार पर इस वैदिक सन्ध्या का निर्माण करके सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, एक निराकार ईश्वर की पूजा की राह हिन्दू जाति को दिखाई। ईश्वर की भक्ति के तीन अंग हैं – स्तुति, प्रार्थना और उपासना। ईश्वर के द्वारा निर्मित इस अद्‌भुत सुन्दर सृष्टि को देखकर हम विस्मित होते हैं और उस सृष्टिकर्ता के प्रति हमारे हृदयों में प्रशंसा और स्तुति के भाव उत्पन्न होते हैं। यही स्तुति है। परमात्मा को और अधिक जानने की इच्छा का नाम ही प्रार्थना है। प्रभु के गुणों का हम ज्यों ज्यों अधिक ज्ञान प्राप्त करते हैं त्यों त्यों उसकी उपस्थिति ब्रह्माण्ड में और अपने भीतर भी अनुभव करने लगते हैं। यही उपासना है। महर्षि ने सत्य सनातन वैदिक धर्मानुसार मनुष्यों के कल्याण के लिए पञ्चमहायज्ञों का विधान किया है। जिन में सर्वप्रथम महायज्ञ ब्रह्मयज्ञ या सन्ध्या है। यह सन्ध्या क्या है ? सच्चिदानन्द परमेश्वर का सम्यक् प्रकार से ध्यान करना ही सन्ध्या है। सन्ध्या के मन्त्रों में स्तुति,

प्रार्थना और उपासना तीनों आ जाते हैं। सन्ध्या आत्मचिन्तन का सर्वोत्तम प्रकार है। और अपने भीतर सात्त्विक संकल्पों को जागृत करने की सर्वोत्तम विधि है। परमेश्वर अनन्त ऊर्जा का भण्डार है, अनन्त ऊर्जा का स्रोत है। सन्ध्या द्वारा अपना सम्बन्ध उस परम शक्ति से जोड़ कर हम उस अनन्त ऊर्जा का कुछ भाग प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं। पर यह तभी सम्भव हो सकता है जब सन्ध्या करते हुए हमें मन्त्रों के पाठ, चिन्तन और मनन से परम शक्ति के सान्निध्य की अनुभूति हो। मन्त्रोच्चारण मात्र से यह सम्भव नहीं होता। सन्ध्या के मन्त्रों का अर्थ जान कर भावों को हृदयङ्गम करने की दिशा में यह एक लघु प्रयास है। इसमें मुझे महर्षि दयानन्द, विद्यानन्द विदेह, रामनाथ वेदालंकार, हरिशरण सिद्धान्तालंकार के ग्रन्थों से विशेष सहायता एवं दिशा प्राप्त हुई है। तदर्थ मैं उनके प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। शुभाशंसा लिखने के लिए आचार्य विद्याभानु शास्त्री, यथोचित परामर्श देने के लिए प्रो. रामप्रताप तथा इसके प्रकाशन में सहयोग करने के लिए आर्यप्रतिनिधि सभा जम्मू कश्मीर के प्रधान श्री भारतभूषण आर्य के प्रति अनुगृहीत हूँ।

15/त्रिकुटानगर
जम्मू-180012

वेदकुमारी घई
श्रावणी पूर्णिमा 2013

शुभाशंसा

मैंने प्रस्तुत पुस्तिका की पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़ा है। विदुषी लेखिका मान्या डॉ० वेदकुमारी जी ने महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित वैदिक संध्या विधि के अन्तर्गत आने वाले वेदमन्त्रों की व्याख्या की है एवं विधिविधानों का सम्यग् रूप से समावेश किया है। इस प्रकार के प्रयास की महती आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति लेखिका ने विद्वत्तापूर्ण शैली में की है। आशा है, पुस्तिका साधकों एवं पाठकों के लिए सन्तोषप्रद एवं मार्गदर्शक सिद्ध होगी।

पुस्तिका संक्षिप्त, सरल एवं अत्यन्त रुचिकर है। यह प्रयास पाठकों के लिए स्वागत योग्य होगा।

दिनांक :- 18-09-2013

आचार्य विद्याभानु शास्त्री
वेदप्रचार अधिष्ठाता
आर्य प्रतिनिधि सभा जम्मू कश्मीर

सन्ध्या (ब्रह्मयज्ञ)

1. महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पंच महायज्ञ विधि में लिखा है कि शरीर की अपेक्षा अधिक अन्त:करण शुद्धि सभी को अवश्य करनी चाहिए। सन्ध्या से अन्त:करण की शुद्धि होती है। प्रभुप्राप्ति का एक मात्र साधन सन्ध्या है।

2. महर्षि ने मानव के लिए पांच महायज्ञ करने हेतु कहे हैं जो अवश्य ही करने चाहिएं :-

१. ब्रह्मयज्ञ, २. देवयज्ञ ३. पितृयज्ञ, ४. अतिथि यज्ञ, ५. बलि-वैश्वदेव यज्ञ।

इन यज्ञों के करने का अभिप्राय यह है कि ब्रह्मयज्ञ से प्रभुभक्ति, स्वाध्याय, आत्मविश्वास और ज्ञान की वृद्धि करें। देवयज्ञ से परस्पर प्रीतिपूर्वक सहयोग से तत्त्व ज्ञान सीखें, बलिवैश्वदेव यज्ञ से अभिमान दूर करें। अतिथि यज्ञ से सेवा की भावना और पितृ यज्ञ से बड़ों के प्रति सद्भाव व कृतज्ञता की भावना दृढ़ करें।

भक्ति का तात्पर्य यह है कि हम उस असीम शक्ति के साथ सम्बन्ध जोड़कर अपने कर्त्तव्य के प्रति अपार बल प्राप्त करें।

सन्ध्या वेदमन्त्रों से ही क्यों ?

क्योंकि वेद के इन पवित्र शब्दों को परमात्मा ने उन पवित्र ऋषियों के हृदयों में शब्दार्थज्ञान के रूप में प्रकट किया है। शब्दों के द्वारा ही एक उपासक प्रभु का साक्षात् सहज रूप से कर सकता है लेकिन भक्त में सच्ची लगन हो इसलिए सन्ध्या वेदमन्त्रों से ही करें।

सन्ध्या प्रतिदिन क्यों करें ?

जैसे नवीन वस्त्र पहनने के बाद गन्दे हो जाते हैं उसी प्रकार आत्मा रूपी वस्त्र पर जीवन के व्यतीत होते होते कुछ मल आदि दोष आवरण रूप में लग जाते हैं। जैसे वस्त्रों पर पड़े मल को दूर करने हेतु साबुन, जल आदि से धोने पर मल का निवारण होता है उसी प्रकार आत्मा की मलिनता दूर करने के लिए प्रतिदिन सन्ध्या करनी आवश्यक है। कुछ प्रमादी जन सोचते हैं जब बूढ़े होंगे तब कर लेंगे, अभी जीवन का आनन्द लो। यह लोग स्वभाव से नासमझ हैं। सन्ध्या है मन:शान्ति के साधन जुटाने हेतु उपायों की सूझ। इन्हें सन्ध्या रूपी आत्मिक भोजन का आनन्द प्राप्त करना चाहिए।

प्रतिदिन सन्ध्या करने से अन्त:करण की निर्मलता और विचारों की शुद्धि होती है, आस्तिकता दृढ़ता, निरभिमानता स्थिर होती है और साथ ही दीर्घायु की प्राप्ति भी होती है।

सन्ध्या का समय :– वैसे तो हर समय प्रभु की उपस्थिति को ध्यान में रखना चाहिए परन्तु विशेष रूप से प्रात: और सायं सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सन्ध्या करनी चाहिए।

सन्ध्या का स्थान :– मनुस्मृति (2,104) में कहा है कि मनुष्य जंगल में एकान्त स्थान में जा कर जल के समीप बैठ कर सन्ध्या, अग्निहोत्रादि नित्यकर्म को करता हुआ गायत्री का ध्यान करे। आज के युग में यह प्राकृतिक परिवेश तो सम्भव नहीं परन्तु फिर भी सन्ध्या यथासम्भव एकान्त शुद्ध पवित्र स्थान पर आसन जमा कर करनी चाहिए। यदि घर में एक स्थान विशेष नियत कर प्रतिदिन वहीं सन्ध्या की जाए तो ध्यान में सहायता मिलती है।

सन्ध्या की तैयारी :– प्रात:काल उठ कर शौचादि से निवृत्त हो कर जल से शरीर को शुद्ध करके और मन को चिन्ताओं से दूर रख कर, स्थिर आसन पर बैठ कर सर्वप्रथम ओ३म् का जप मन ही मन में करना चाहिए।

संध्या का लाभ

मनु महाराज का आदेश है कि सब मनुष्य एकाग्रचित्त हो प्रातः-सायं संध्या करते रहें, क्योंकि निरन्तर सन्ध्योपासना के द्वारा ही दीर्घायु और ब्रह्मतेज को प्राप्त कर सकते हैं और सम्पूर्ण सुख को पा सकते हैं।

मन लगाने की विधि

मानव का मन अति चंचल होता है, वह धर्म कर्म में स्थिर न होकर भटकता फिरता है। अतः बलपूर्वक अपनी वृत्ति उन भावों पर रखी जाये, जो मन्त्रों के शब्द समूह में गुँथे हुए हैं। कुछ काल के अभ्यास से संध्या स्वभाव का अंग बन जायेगी।

मानव अपने मन के राग द्वेष, माया मोह के भावों को त्यागकर सत्याचरण से मन को शुद्ध करके संध्या का आरम्भ करे।

सन्ध्या की प्रक्रिया :– सन्ध्यायन्ति परब्रह्म यस्यां, सन्ध्यायते वा परब्रह्म यया सा सन्ध्या। महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में बच्चों के अध्ययन अध्यापन के प्रसङ्ग में लिखते हैं – ''इस प्रकार गायत्री मन्त्र का उपदेश करके सन्ध्योपासन की जो स्नान, आचमन प्राणायाम आदि क्रिया हैं, सिखलावें।'' आगे फिर लिखते हैं – ''आचमन उतने जल को हथेली में लेके उस के मूल और मध्यदेश में ओठ लगाके करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुंचे, न उस से अधिक न न्यून। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी सी होती है। पश्चात् मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अङ्गों पर जल छिड़के, उस से आलस्य दूर होता है, जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे। पुनः **समन्त्रक प्राणायाम, मनसा परिक्रमण, उपस्थान** पीछे परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावे।'' यहां महर्षि ने सन्ध्योपासना के विभिन्न भागों की ओर संकेत कर दिया है।

सर्वप्रथम आचमन मन्त्र से आचमन आलस्य को दूर करने को किया जाता है। फिर अङ्गस्पर्श और अङ्गमार्जन के मन्त्रों द्वारा अङ्गों का स्पर्श कर तथा जल छिड़क कर अङ्गों के स्वास्थ्य तथा पवित्रता के लिए प्रार्थना की जाती है। फिर प्राणायाम द्वारा चित्त को स्थिर किया जाता है। तत्पश्चात् अघमर्षण के तीन मन्त्रों में सृष्टि और प्रलय के चक्र का वर्णन भक्त के हृदय से अहंकार और अवसाद रूप पाप को दूर कर देता है। प्रभु के प्राकृतिक नियम और उन नियमों के अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि सौरमण्डलों की रचना एवं क्षय, पुनः रचना एवं क्षय इस सब का वर्णन उस विराट् की महती महिमा की अनुभूति कराता है। तत्पश्चात् मनसापरिक्रमा के छः मन्त्रों का पाठ करता हुआ साधक अपने सामने, पीछे, दाएं, बाएं, नीचे, ऊपर सभी दिशाओं में परमात्मा की अनुभूति करता है। **प्रत्येक दिशा साधक की जीवनयात्रा की एक दिशा है** प्राचीदिक् आगे बढ़ने की दिशा, दक्षिणादिक् दाक्षिण्य से ऐश्वर्य प्राप्त करने की दिशा, प्रतीचीदिक् संयम की दिशा, उदीचीदिक् उन्नति की दिशा, ध्रुवादिक् स्थिरता की दिशा और ऊर्ध्वादिक् सर्वोच्च स्थिति पर पहुंचने की दिशा है। इस यात्रा में अनन्त गुणों वाला परमात्मा ही अधिपति है, उस के गुण जिन का वर्णन अलङ्कार रूप में हुआ है, रक्षक हैं उन गुणों के पाशादि से छुड़ाने वाले सहायक गुण प्रेरणा देने वाले हैं। इस यात्रा में साधक अहिंसा का संकल्प लेते हुए कहते हैं कि जो हम से द्वेष करता है और जिस से हम द्वेष करते हैं, उसे हम आप के न्याय पर छोड़ते हैं या राष्ट्र की न्यायव्यवस्था पर छोड़ते हैं। मन से सभी दिशाओं की परिक्रमा करके सर्वत्र प्रभु की शक्तियों को नमन करते हुए साधक प्रभु की उस उत्तम ज्योति के निकट जा पहुंचते हैं जिस का संकेत उस की पताकाएं मार्ग में दे रही हैं। प्रकृति के विभिन्न रूपों में देवों की अद्भुत सेनाएं जिस सेनापति का शासन प्रकट कर रही हैं वही मित्र है, वरुण है, अग्नि है। साधक प्रार्थना करते हैं कि उसी ज्योतिर्मय

परमेश्वर को ज्ञानचक्षुओं से देखते हुए, उसी का गुणगान सुनते और कहते हुए हम सौ वर्ष तक या उससे अधिक वर्षों तक अदीन होकर जीवनयात्रा पूरी करें। जीवनयात्रा का अन्तिम लक्ष्य है प्रभु के दिव्य तेज को धारण कर उस के साथ एकाकार हो जाना। यह गायत्री मन्त्र की साधना से सम्भव है। प्रभु भूर्भुवः स्वः अर्थात् सच्चिदानन्द है जबकि प्रकृति केवल भूः सत् है, आत्मा भूः भी है तथा भुवः भी अर्थात् सत् भी और चित् भी। जब आत्मा उस सविता देव के वरेण्य भर्ग को, वरणीय दिव्य तेज को ध्यान द्वारा धारण कर लेता है तो वह भी दिव्य हो जाता है। क्योंकि सविता देव की दिव्य प्रेरणाएं उस की धारणाओं को भी दिव्य बना देती हैं। जिस प्रकार अग्नि के सम्पर्क में आकर कोयला अग्निरूप हो जाता है उसी प्रकार सविता देव के तेज को धारण कर मानव का आत्मा भी तेजोमय तथा आनन्दमय हो जाता है। सभी सन्ध्यामन्त्रों के आदि में ओम् का उच्चारण किया जाता है। यह परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है। अवति रक्षतीति ओम्। कठोपनिषद् (वल्ली 2. म. 15) में कहा है कि सभी वेद, सभी तपश्चरण जिस को कहते तथा मान्यता देते हैं वही नाम ओम् है।

ओम् सत् है ओम् चित् है ओम् परमानन्द है।
ओम् रक्षक ओम् पालक ओम् सृष्टिकन्द है।।

सन्ध्या के अन्त में कल्याणरूप कल्याणकारी, सुखस्वरूप और सुखकारी प्रभु को प्रणाम करके साधक पुनः प्रभु के चरणों में बैठने का संकल्प लेता है।

मन में प्रभु का ध्यान करें हम।
उसका नित गुणगान करें हम॥

सन्ध्यामन्त्राः

आचमनमन्त्रः

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्त्रवन्तु नः।

। यजु०। 36.12 । । ।

अर्थ– देवीः – दिव्यगुणों वाले, **आपः** – प्रभु, प्रभुशक्तियाँ एवं जल, **अभिष्टये** - अभीष्ट की पूर्ति के लिए, **नः** – हमारी, **पीतये** – रक्षा के लिए (तथा) **शम्** – शान्ति के लिए, **भवन्तु** – हों, **शंयोः** – शान्ति की प्राप्ति और पाप, रोग को दूर करने के लिए, **नः** – हमारी, **अभि** – ओर, **स्रवन्तु** – बहें (विद्यमान रहें)।

व्याख्या :– सन्ध्या में यह पहला मन्त्र आचमन मन्त्र है जिसे पढ़ कर जल का आचमन किया जाता है। ब्रह्मयज्ञ का उद्देश्य शान्ति की प्राप्ति है अतः इस आध्यात्मिक उद्योग का प्रारम्भ शम्-शान्ति से ही किया गया है। मानव शरीर पञ्चमहाभूतों के मेल से बना है। ये पञ्चभूत हैं-पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश। वैसे तो शरीर का स्वास्थ्य इन पांचों तत्त्वों के ठीक अनुपात पर निर्भर करता है परन्तु शान्ति और शीतलता प्रदान करने वाला जल तत्त्व इन में विशेष महत्त्वपूर्ण है। अथर्ववेद में कहा है कि जलों के भीतर ही सभी औषध विद्यमान हैं[1] तथा जल ही स्वास्थ्य का सुख देने वाले हैं।[2] ऋग्वेद में जलों को मां की उपमा देकर कहा है कि ये मातृरूप जल हमें शुद्ध पवित्र बनाते हैं।[3] ये दिव्य गुणों वाले जल सभी दोषों को दूर भगाते हैं।[4] पारस्कर गृह्यसूत्र में जलों को

---

1. *अप्सु मे सोमोऽ ब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा : 1 अ. 1.6.2*
2. *आपो हि ष्ठा मयोभुवः। अ. 1.5.1.*
3. *आपोऽस्मान् मातर : शुन्धयन्तु ऋ० 10.17.10.*
4. *विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवी : ऋ० 10.17.10.*

कल्याण करने वाले, शान्ति देने वाले कहा गया है। हम सब का कर्त्तव्य है कि हम जलस्रोतों की प्रदूषण से रक्षा कर उनकी पवित्रता बनाए रखें।

इन्द्रियस्पर्शमन्त्रः

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुश्चक्षुः।
ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः।
ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकरपृष्ठे॥

अर्थ :– ओं वाक् वाक् – प्रभुकृपा से मेरी वाणी में बोलने की शक्ति हो, **ओं प्राणः प्राणः** – नासिका में प्राण और घ्राण शक्ति हो, **ओं चक्षुश्चक्षुः** – आंखों में देखने की शक्ति बनी रहे, **ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्** – कानों में सुनने की शक्ति रहे, **ओं नाभिः** – नाभि में पाचन शक्ति बनी रहे, **ओं हृदयम्** – हृदय ठीक कार्य करता रहे, **ओं कण्ठः** – कण्ठ में प्राणनालिका और भोजन नालिका ठीक कार्य करती रहें, **ओं शिरः** – मस्तिष्क ठीक कार्य करता रहे, **ओं बाहुभ्यां यशोबलम्** – भुजाओं में यश देने वाला बल बना रहे, **ओं करतलकरपृष्ठे** – हाथों के तल तथा पिछले भाग ठीक कार्य करते रहें। प्रभु कृपा से मेरी सभी ज्ञानेन्द्रियां तथा कर्मेन्द्रियां इस प्रकार कार्य करती रहें कि उन से यश और बल दोनों की प्राप्ति हो।

व्याख्या :– इस मन्त्र द्वारा जल से इन्द्रियों का स्पर्श करते हुए साधक अपनी ज्ञानेन्द्रियों में ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता के लिए तथा कर्मेन्द्रियों में शुभ कर्म करने की क्षमता के लिए प्रभु से प्रार्थना करता है। शरीर के सभी अंग स्वस्थ रहें तथा अपना अपना कार्य इस प्रकार सुचारु ढंग से करें कि उन से यश और बल की प्राप्ति हो।

मार्जनमन्त्रः

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः।
ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः।
ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥

अर्थ :– **भूः** – सब का उद्भवस्थान प्रभु, **शिरसि** – सिर में, पुनातु पवित्रता करे, **भुवः** – चैतन्य प्रभु, **नेत्रयोः** – नेत्रों में, **पुनातु**-पवित्रता दे, **स्वः** –सुखस्वरूप **प्रभु** – **कण्ठे**-कण्ठ में, **पुनातु**-पवित्रता करे, **महः** – महान् प्रभु **हृदये** – हृदय में, **पुनातु** – पवित्रता दे, **जनः** – जनक प्रभु, **नाभ्यां** – नाभि में, **पुनातु** – पवित्रता दे, **तपः** – तपःस्वरूप प्रभु, **पादयोः** – पैरों में, **पुनातु** – पवित्रता दे, **सत्यं** – सत्यस्वरूप प्रभु, **पुनः** – फिर, **शिरसि** – सिर में **पुनातु** –पवित्रता दे, **खं ब्रह्म** – आकाश की तरह व्यापक प्रभु, **सर्वत्र** – सभी अङ्गप्रत्यङ्ग में, **पुनातु** – पवित्रता दे।

व्याख्या :– सभी अङ्गप्रत्यङ्गों के स्वास्थ्य की प्रार्थना के पश्चात् प्रभु से उन सब अङ्गप्रत्यङ्गों की पवित्रता के लिए प्रार्थना की गई है।

प्राणायाममन्त्रः

ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यम्॥

यह प्राणायाम मन्त्र मार्जनमन्त्रों का ही संक्षिप्त रूप है इसमें प्राणायाम करते हुए प्रभु के सात नामों का ध्यान किया जाता है। अन्त में तो केवल ओ३म् के उच्चारण मात्र से ही चित्त को समाहित करने का यत्न किया जाता है।

अघमर्षणमन्त्राः

ओम् ऋतं च सत्यंचाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽअर्णवः॥ 1॥
ओं समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी॥ 2॥
ओं सूर्य्याचन्दमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ 3॥ ऋग्वेद 10, 190, 1-3

अर्थ :– अभि + इद्धात् तपसः - सब ओर से देदीप्यमान, **तप** :- स्वरूप (परमात्मा) से, **ऋतं** – प्राकृतिक नियम, **सत्यं च** – तथा जीवों के लिए नियम, **अधि + अजायत** - प्रकट हुए। **ततः** – उन नियमों से, **रात्री** – अन्धकारमयी प्रकृति, **अजायत** - पैदा हुई, **ततः** - उसके बाद, **समुद्र** – अन्तरिक्ष में स्थित समुद्र nebula (धुन्ध), **अर्णवः** – गतिशील हुआ। ऋ 10, 190, 1-3.

अर्णवात् समुद्रात्– गतिशील हुए समुद्र (nebula) से, **संवत्सरः**– काल की कल्पना, **अजायत**–हुई, **अहोरात्राणि विदधत्** – दिन-रात को बनाने के लिए, **मिषतः विश्वस्य** – गतिशील हुए उस अणुसमुद्र को, **वशी** – वश में करने वाले, **धाता** – विधाता ने, **यथापूर्वम्** – पहले की तरह, **सूर्याचन्द्रमसौ** – सूर्य और चन्द्रमा को, **दिवं** – द्युलोक को, **पृथिवीं**– पृथिवी को, **अन्तरिक्षं** – अन्तरिक्ष को, **अथो**-तथा, **स्वः** –सुखभरे लोकलोकान्तर को, **अकल्पयत्** :–बना दिया। ऋ ०10. 190. 2-3.

व्याख्या :– ऋग्वेद से लिए गये इन तीन मन्त्रों को अघमर्षण अर्थात् पाप का नाश करने वाला कहा गया है। इन मन्त्रों में बीजरूप से सृष्टिविज्ञान का वर्णन है जिसका मनन करने पर परमात्मा की अनन्त असीम महिमा की अनुभूति होती है। असंख्य सौरमण्डल निरन्तर जनमते मरते हैं जैसे असंख्य जीव निरन्तर जनमते मरते रहते हैं। प्रलय और सृष्टि का यह अटूट क्रम उस नियामक विधाता के नियमों के अनुसार चलता रहता है। जिस प्रकार दिन के पश्चात् रात्रि और रात्रि के पश्चात् दिन का चक्र चलता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का चक्र निरन्तर चलता है। उस देदीप्यमान तपःस्वरूप परमात्मा से प्राकृतिक नियम और सत्य नियम प्रकट होते हैं जिनके अन्तर्गत वह नियन्ता सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि की पूर्ववत् रचना करता है और तब संवत्सर अर्थात् - सैकण्ड, मिनट, घण्टा, दिवस, सप्ताह, मास वर्ष रूप कालचक्र चलता रहता है। इस विशाल ब्रह्माण्ड में मानव कितना छोटा और कितना क्षणभङ्गुर है, यह चिन्तन मानव को अभिमान रहित, पापरहित बनाता है।

इस सृष्ट्युत्पत्ति क्रम में प्रकाशमान तपःस्वरूप प्रभु ने एक साथ ऋत

और सत्य, प्राकृतिक और सामाजिक नियम बनाए। तत्पश्चात् रात्रि और समुद्र उत्पन्न हुआ। यहां समुद्र का अर्थ जल का समुद्र नहीं अपितु Nebula है जिसे पुरुषसूक्त में विराट् तथा हिरण्यगर्भ सूक्त में हिरण्यगर्भ कहा गया है। यहां रात्रि से अभिप्राय रात नहीं क्यों कि अहोरात्राणि दिन रात का उल्लेख अगले मन्त्र में है। यहां रात्रि से तात्पर्य प्रकृति की वह अनघड़ अवस्था है जिसमें सब अन्धकारमय एकरूप है। तत्पश्चात् विकास की प्रक्रिया शुरू हुई। नेब्युला नीहारिका रूप एकरस प्रकृतितत्त्व में हलचल हुई। उस हलचल के पश्चात् काल या संवत्सर की कल्पना हुई। दिन रात आदि को बनाने के लिए प्रभु ने सूर्य और चन्द्र को बनाया और पृथिवी, द्युलोक, अन्तरिक्ष, स्वः लोक सभी पहले की तरह बनाए।

मनसापरिक्रमामन्त्राः

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिताऽऽदित्या इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो
अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ 1॥

अथर्ववेद 2, 27, 1

अर्थ- प्राची दिक् – यह पूर्व दिशा, आगे बढ़ने की दिशा (है), **अग्निः अधिपतिः** – इस के अधिपति प्रकाशस्वरूप परमात्मा तथा माता, पिता आचार्य रूप अग्नि (हैं), **असितः** – बन्धनरहित परमदेव (तथा) विषयों के बन्धन में न जकड़े जाने का गुण, **रक्षिता** – रक्षा करने वाला है, **आदित्याः** – सूर्य रश्मियां तथा अखण्ड ज्ञानरश्मियां, **इषवः** – प्रेरणा देने वाली हैं। **तेभ्यः नमः अधिपतिभ्यः** – उन सब अग्नि आदि अधिपतियों को हमारा नमस्कार, **नमः रक्षितृभ्यः** – असित आदि रक्षकों को हमारा नमस्कार, **नमः इषुभ्यः** – आदित्य आदि प्रेरकों को हमारा नमस्कार, **नमः एभ्यः** – इन सब को हमारा नमस्कार (हो), **यः** – जो **अस्मान्** – हमारे साथ, **द्वेष्टि**-द्वेष करता है **च** – और **यं** – जिसके साथ **वयं** – हम, **द्विष्मः** – द्वेष करते हैं, **तम्** – उस को **वः** – आपकी,

जम्भे – न्याय रूपी दाढ़ में **दध्मः** – रखते हैं।

व्याख्या :– पूर्वदिशा से उदित होकर सूर्य निरन्तर आगे बढ़ता है, इसलिए उसे प्राची दिशा कहते हैं। मनसापरिक्रमा का यह प्रथम मन्त्र साधक को आगे बढ़ने का उपदेश देता है। प्र उपसर्ग का अर्थ है आगे और अञ्च् धातु का अर्थ है चलना। आगे बढ़ने में प्रकाशस्वरूप प्रभु हमारे सहायक हों यह प्रार्थना साधक करता है। अग्नि का अर्थ माता पिता और आचार्य भी है जो बच्चे की ब्रह्मचर्यावस्था में उसे आगे बढ़ाते हैं। मनु ने कहा है कि पिता गार्हपत्य अग्नि है, माता दक्षिणाग्नि है तथा आचार्य आहवनीय अग्नि है।[1] माता ही मानव की जननी है, वही सन्तान को चलना सिखाती है। यदि वह स्वयं गुणवती संस्कारयुक्त है तभी बच्चे के अन्दर उत्तम गुणों का विकास करने में सफल हो सकती है। शिशु के भावी जीवन का विकास माता के गर्भ में और माता की गोद में मिले संस्कारों के आधार पर होता है। वही शिशु की प्रथम गुरु है। बच्चा जब कुछ बड़ा होता है तब वह पिता के व्यवहार से सीखता है। यदि पिता उत्तम गृहपति है तो बच्चा भी उसका अनुसरण करता हुआ अच्छा गृहपति बनेगा। तीसरा गुरु आचार्य होता है जिसे आहवनीय अग्नि कहा गया है। वही ब्रह्मचर्यावस्था में बच्चे को ज्ञान का प्रकाश देकर उसे तेजस्वी, आचारवान् तथा सुसंस्कृत बनाता है। इस प्रकार ये तीनों अग्नियां बच्चे को जीवन की राह पर आगे बढ़ाने में सहायक होती हैं।

इस प्रगति की दिशा में व्यक्ति का रक्षक होता है विषयों में न बंधने का गुण। यदि वह प्रमादवश विषयों के बन्धन में बँध जाता है तो ज्ञान या शिक्षा के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकता। उसे निरन्तर ज्ञानरश्मियों से प्रेरणा लेते रहना चाहिए तभी उन्नति की ओर अग्रसर हो सकता है। मन्त्र के अग्रिम भाग में इन सब निर्देशक प्रेरक शक्तियों को नमस्कार किया गया है। अन्त में यह कहा है कि यदि कोई दुर्जन हम सबसे द्वेष करता है और परिणामस्वरूप हम सब भी उस से द्वेष करते हैं तो उसे हम प्रभु

---

1. पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृत :।
गुरुराहवनीयस्तु साऽग्नित्रयी गरीयसी। मनु० 2. 231.

की दण्डशक्ति के अधीन करते हैं। यहां अस्मान् तथा वयं में बहुवचन का तथा यं तथा तं में एकवचन का प्रयोग विशेष द्रष्टव्य है। अथर्ववेद में यह कामना की गई है कि सभी दिशाएं मेरी मित्र बनें अर्थात् कोई भी शत्रु न हो। फिर भी समाज में यदि कोई ऐसा दुर्जन हो जो अपने स्वार्थवश सभी सज्जनों से द्वेष करे और समाज के सभी व्यक्ति भी उसे समाजहित में बाधक जान कर उसे दुष्ट समझें तो भी किसी को यह अधिकार नहीं कि कानून को हाथ में लेकर उस दुर्जन को स्वयं दण्डित करे। उसे राष्ट्राधिकारियों के हवाले कर के राष्ट्र की न्यायव्यवस्था के अधीन ही करना चाहिए। राष्ट्राधिपतियों का यह कर्त्तव्य है कि वे उसे सुधारने का प्रयत्न करें और उसका सुधार सम्भव न हो तो उसे समुचित दण्ड दें।

ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ 2॥

अथर्ववेद 3, 27, 2

अर्थ– दक्षिणा दिग् – दक्षिणदिशा - दाक्षिण्य (प्रवीणता) प्राप्त करने की दिशा (है)। **इन्द्रः अधिपतिः** – इस के अधिपति इन्द्र हैं परमैश्वर्यवान् परमात्मा तथा इन्द्रियों का स्वामी आत्मा, **तिरश्चिराजि : रक्षिता** – अलौकिक चमक वाला परमात्मा तथा पशुपक्षियों की पंक्तियां इस दाक्षिण्य की रक्षक हैं **पितर : इषवः** – पितर गण प्रेरक हैं।

व्याख्या – किसी भी क्षेत्र में शिखर पर पहुंचने के लिए निरन्तर आगे बढ़ना और उस कार्यक्षेत्र में दक्षता, योग्यता, पूर्णता को प्राप्त करना वाञ्छनीय होता है। दाक्षिण्यप्राप्ति के साधन हैं निरन्तर अभ्यास, जितेन्द्रिय होने का गुण तथा ऐश्वर्य। आज पाश्चात्य देशों ने विज्ञान के क्षेत्र में जो उन्नति की है, नित नये वैज्ञानिक आविष्कारों से विश्व को चकित कर दिया है उस के पीछे प्रमुख कारण है उन के वैज्ञानिकों की दाक्षिण्य प्राप्त करने की लगन, उन की जितेन्द्रियता तथा उन राष्ट्रों द्वारा वैज्ञानिक

परीक्षणों के लिए वैज्ञानिकों को दी जाने वाली सुविधाएं, अपार धन सम्पत्ति जिस का प्रयोग वे नित नये परीक्षणों में करते रहे हैं। प्राचीन भारत में वेद, दर्शन, साहित्य, व्याकरण और विज्ञान के क्षेत्रों में हमारे पूर्वजों ने भी अभूतपूर्व दाक्षिण्य प्रदर्शित किया था जिसका लोहा अभी भी विश्व मानता है।

इस दक्षता के रक्षक हैं पशु पक्षी जिन की दक्षता का अनुकरण कर के मानव आविष्कार करता है। चील की उड़ान से सीख कर मनुष्य ने वायुयान बनाए हैं। अपने पंखों को लगभग स्पन्दनशून्य करके बिना शब्द किए जैसे चील उड़ान भरती है वह दक्षता अभी हमारे वायुयानों को प्राप्त करनी है। मधुमक्खियों द्वारा मधु के छत्तों का निर्माण उनकी दक्षता को दिखाता है, रानी मधुमक्खी की प्रबन्धन क्षमता दर्शनीय है। इस प्रकार विभिन्न पशुपक्षी अपने अपने क्षेत्र में पूर्ण दक्षता को प्राप्त किए हुए दीखते हैं जिन से मनुष्य बहुत कुछ सीख सकता है। हमारे पूर्वज पितर इस दक्षता प्राप्ति में हमारे लिए प्रेरक हैं। पशुपक्षियों में तो उनकी तत्तत् क्षेत्र की दक्षता नैसर्गिक होती है। गाय भैंस का बच्चा पानी में जाते ही तैरने लगता है, उसे कोई सिखाता नहीं। मछलियों को तैरना कोई सिखाता नहीं। उस कला में उनकी परिपूर्णता या दाक्षिण्य उन के पास सुरक्षित है पहले से ही, परन्तु मानव को तो उस के पितर ही सिखाते हैं, प्रेरित करते हैं।

ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिताऽन्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥3॥ अथर्ववेद 3, 27, 3

अर्थ– प्रतीची दिग् – पश्चिम दिशा प्रत्याहार (प्रति अञ्च्-वापिस लौटना) की दिशा है, **वरुणःअधिपतिः** – इस दिशा के अधिपति हैं पाशों वाले तथा पाशों से छुड़ाने वाले वरुण परमात्मा तथा वरणीय गुणों वाले शिक्षक, **पृदाकुः रक्षिता** – सब भोग्य पदार्थों को देने वाली पृथिवी रक्षा करने वाली है, **अन्नम् इषवः** – सब अन्न आदि भोग्य पदार्थ प्रेरणा देने वाले हैं।

व्याख्या– आगे बढ़ता हुआ मानव जब दाक्षिण्य अर्थात् निपुणता से ऐश्वर्ययुक्त हो जाता है, प्रकृति पर विजय प्राप्त कर के सुख सुविधाओं के अम्बार लगा लेता है तब प्रतीची दिशा उसे वापिस लौटने का सन्देश देती है कि विषय वासनाओं में मत फंस जाओ। इस दिशा के अधिपति वरुण हैं (सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास पैरा 23) में वृञ् वरणे पर ईप्सायाम् से उनन् प्रत्यय से वरुण शब्द की सिद्धि बता कर कहा है जो सब आत्मयोगी विद्वान् मुक्ति की इच्छा करने वालों से ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर वरुण संज्ञक हैं जो नियम में रखते हैं। पालन करने वाली तथा सब भोग्य पदार्थ देने वाली पृदाकु पृथिवी (पृ-पालना, भरना, दा-देना, कुः-पृथिवी) रक्षा करने वाली है। पृथिवी सहनशीलता का सन्देश देती है। दानशीलता और निरभिमानता का उपदेश देती है। भर भर के देने वाली धरती हमें सहनशीलता, निरभिमानता और दानशीलता का पाठ पढ़ाती है। किसान भूमि में बीज बोता है तो भूमि में अन्न दान करता है। भूमि को दिया गया प्रत्येक दाना सैंकड़ों दाने उत्पन्न करता है। वैसे ही मानव समाजरूपी भूमि को दिया गया दान भी बहुत उत्पादक होना चाहिए जिस से समाज में व्यक्ति परिवार, समाज और राष्ट्र का कल्याण हो। चाहे वह क्षेत्र विद्या का हो या स्वास्थ्य का, सदाचार साधना का हो या वैज्ञानिक आविष्कार का, उस से समाज में सत्य, शिव और सुन्दर की ही वृद्धि हो। पर देते हुए अभिमान न हो। रहीम प्रतिदिन याचकों को दान देते थे पर अपनी आंखें नीची कर लेते थे। कवि गङ्ग ने उन्हें पूछा–

ऐसी कहां नवाब जू सीखी देनी दैन।
ज्यों ज्यों कर ऊंचों चढ़े त्यों त्यों नीचे नैन।।

रहीम ने उत्तर दिया था–

देने वाला और है जो देता दिन रैन।
दुनिया मेरा नाम ले, या विधि नीचे नैन।।

अन्न प्रेरणा देते हैं कि संयम से उपभोग करना ही सुखकर है। संयम का त्याग अन्ततः दुःखकर होता है। तब भोग्य पदार्थों को हम नहीं भोगते वे ही

हमें खा लेते हैं। भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः। अन्न शब्द अद् भक्षणे धातु से बना है। अनाज फल सब्जियां आदि सभी खाद्य पदार्थ अन्न हैं। पृथिवी ने हमारी उदरपूर्ति के लिए असंख्य खाद्य पदार्थ दिये हैं जिन्हें हम संयमपूर्वक खाते हैं तो वे हमारा पोषण करते हैं पर यदि असंयमपूर्वक खाते हैं तो हमारे दुःख का कारण बनते हैं। आयुर्वेद में कहा है– प्रश्न– कोऽरुक् कोऽरुक् कोऽरुक् ? उत्तर– ऋतभुक् हितभुक् मितभुक्। प्रश्न– नीरोग कौन है ? उत्तर– ऋतहितमितभोजी। ऐश्वर्ययुक्त होने पर प्रायः मानव अपने को नाना पाशों में जकड़ लेता है। ये पाश कुछ उत्तम होते हैं (जैसे मस्तिष्क में यह भ्रान्ति कि मैंने यह धन अपने बल से कमाया है, यह मेरा है, मैं ही इसे देने वाला दानी हूं आदि 2) कुछ मध्यम होते हैं (हृदय में निरन्तर भय कि इस ऐश्वर्य को कोई छीन न लें) कुछ अधम (मैं इसे कामवासना तृप्त करने में खर्च कर लूं यह भोगेच्छा) इन तीनों प्रकार के पाशों से परमात्मा वरुण ही छुड़ा सकते हैं। ऋ. 1.24.15, य. 12.12, तथा अ. 7.83.3 में वरुण परमात्मा से यही प्रार्थना की गई है कि हमारे तीनों प्रकार के पाशों को खोल दो ताकि हम आपके व्रत में रहते हुए अनागस होकर, पापरहित होकर बन्धनरहित हो जाएं।

ओम् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥4॥

अथर्ववेद 3, 27, 4

अर्थ– उदीची दिक् – उत्तर दिशा ऊपर उठने की, उन्नति की दिशा है, **सोमः अधिपतिः** – इस का अधिपति प्रभु सोम है, सौम्यता का गुण है, **स्वजः रक्षिता** – स्वयम्भू परमात्मा तथा अच्छी गति, क्रियाशीलता का गुण, गति, नेतृत्व का गुण रक्षक है (सु = अच्छा, अज्– ले जाना, नेतृत्व करना), **अशनिः** – विद्युत् तथा अग्नि की ज्वालाएं, **इषवः**– प्रेरणा देने वाली हैं।

व्याख्या– उदीची उन्नति की दिशा है। उदीची शब्द उत् = ऊपर, अञ्च् = गति से बना है अर्थात् ऊपर उठने की, उन्नति की दिशा। स्वजः

शब्द दो तरह से बना है। एक स्व और ज: से अर्थात् स्वयं उत्पन्न स्वयम्भू परमात्मा, दूसरा है सु- अच्छा, अज- गति क्रियाशीलता अर्थात् निरन्तर क्रियाशीलता, अज- ले जाना अर्थात् अच्छा नेतृत्व देने का गुण।

सोम- अध्यात्म अर्थ में सोम शान्ति का धाम परमात्मा है। आधिभौतिक अर्थ में सोम वीर्य है, जीवनीशक्ति है।

सोम का अर्थ चन्द्रमा भी है। सोम एक औषधि भी है।

जो आलस्य में रत नहीं, जो जागते रहते हैं, क्रियाशील रहते हैं सोमप्रभु उन्हीं की सहायता करते हैं, उनसे मित्रता करते हैं- जो जागता है उस के प्रति सोम कहता है- मैं तुम्हारे सखा रूप में तुम्हारे साथ हूं। प्रभु उन्हीं का साथ देते हैं जो स्वयं क्रियाशील होते हैं। जीवनीशक्ति भी उन्हीं का साथ देती है जो क्रियाशील होते हैं। निरन्तर आगे बढ़ते हुए, सब प्रकार का दाक्षिण्य प्राप्त कर ऐश्वर्यशाली होने पर भी अपने को संयम में रखते हुए जब मानव सोमप्रभु को ही स्वामी मानता है, स्वयं निरभिमानी और सौम्य बना रहता है तभी उस की उन्नति होती है। अपने द्वारा अर्जित धन दौलत पर घमण्ड करके निरंकुश हुआ मानव अवनति के मार्ग पर चल पड़ता है। जो ऐश्वर्ययुक्त होकर भी सौम्य रहता है, वही सब का प्रिय बनता है तथा उन्नति करता है। उसमें क्रियाशीलता तथा बढ़िया नेतृत्व देने का गुण उसे और ऊपर उठाते हैं। आकाश में चमकती हुई बिजली की रेखाएं उसे प्रेरणा देती हैं। जैसे बिजली चमकती है तो अन्धकार, बादल छिन्न भिन्न हो जाते हैं उसी प्रकार हम विवेक का सहारा लेकर ऊपर उठें।

ओं यो जागार तमृच: कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
जो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योका:।।

ऋ० 5. 44. 14. सा. 1826

ओं ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ 5 ॥अथर्ववेद 3, 27, 5

अर्थ– ध्रुवा दिक् – निचली दिशा ध्रुवा दिशा स्थिरता की दिशा है। प्रत्येक भूमि का अन्तरङ्ग ध्रुवा दिशा है। **विष्णुः अधिपतिः** – सब में व्याप्त विष्णु भगवान् तथा सब को संगठित रखने का गुण इस दिशा का स्वामी है, **कल्माषग्रीवः रक्षिता** – विविध नाम रूपों के ज्ञान को उत्पन्न कर अपने कण्ठ में धारण करने वाला प्रभु, विविध ज्ञान विज्ञान से युक्त होने का गुण इस का रक्षक है, **वीरुध : इषवः** – नीचे से ऊपर उठती हुई और फैलती हुई लताएं वनस्पतियां प्रेरणा देने वाली हैं।

व्याख्या – सफलता की सीढ़ियां चढ़ने के पश्चात् उस उन्नत अवस्था को स्थिर बनाए रखना भी आवश्यक होता है। इस स्थिरता का अधिपति सब में व्याप्त रहने वाला विष्णु भगवान् है। जो व्यक्ति भगवान् की विष्णुशक्ति को याद रखता है अर्थात् सब को संगठित रखता है केवल अपनी उन्नति में नहीं अपितु सब की उन्नति में विश्वास रखता है, सब को सहयोग देता है और सब से सहयोग लेता है उस की उन्नति स्थिर रहती है। कल्माषग्रीव होने से अर्थात् विविध ज्ञान विज्ञान को अपने कण्ठ में बनाए रखने से इस स्थिरता की रक्षा होती है। ज्ञान के क्षेत्र में भी एकाङ्गी या नितान्त सीमित क्षेत्र का ज्ञान लाभकर नहीं होता। उन्हीं की सफलता या उन्नति स्थिर रहती है जो अपने क्षेत्र में विभिन्न विषयों का व्यापक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, कल्माषग्रीव बनते हैं। एक राजनीति के विद्यार्थी के लिए इतिहास, अर्थशास्त्र का ज्ञान भी आवश्यक होता है। इस विषय में धरती से निकल कर फैलती हुए लताएं हमें प्रेरणा देती हैं कि अपनी प्रगति का आधार हम व्यापक बनाएं।

ओम् ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ 6 ॥

अथर्व० 3.27, 6

अर्थ – ऊर्ध्वादिक् – ऊर्ध्वादिक् ऊपरली दिशा सर्वोच्च स्थिति की दिशा है। **बृहस्पतिः अधिपतिः** – वह बड़ों से बड़ा भगवान् इस दिशा का स्वामी है, विद्या को पाकर पूर्ण ज्ञानी बना हुआ मनुष्य भी इस का अधिपति बनता है, **श्वित्रः रक्षिता** – शुद्धचरित्रवान् होने का गुण इस का रक्षक है, **वर्षम् इषवः** – वर्षा की बरसती जलधाराएं प्रेरणा देती हैं।

व्याख्या–आत्मज्ञान को प्राप्त कर के मानव इस सर्वोच्च स्थिति को पा लेता है। महान् प्रभु ही उस का अधिपति है। गीता में कहा है-न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते-पवित्र करने वाले साधनों में ज्ञान ही सर्वोत्तम साधन है। ज्ञान से पवित्र हुआ सात्त्विक प्राणी इस सर्वोच्च स्थिति में पहुंच कर आनन्दमय हो जाता है। वर्षा की फुहारें जैसे धरती को हरा भरा कर देती हैं उसी प्रकार आनन्दसुधा की वर्षा उसे आनन्दित कर देती है। अब संसार के भोग्यपदार्थ उसे आकर्षित नहीं करते। काम, क्रोध आदि उसे विचलित नहीं करते। मानवजीवन की उच्चतम स्थिति में पहुंचा वह मनुष्य प्रभु से यही प्रार्थना करता है कि उसकी वह सात्त्विक उच्च स्थिति बरकरार रहे।

बृहस्पति का अर्थ है महान् स्वामी (बृहत् = महान्, पति=स्वामी) जो सब भुवनों का अर्थात् लोक लोकान्तरों का स्वामी है वह बृहस्पति है। मैत्रायणी संहिता में कहा है ब्रह्म वै बृहस्पतिः मै. 2.2.3 ब्रह्म वेदज्ञान को भी कहते हैं। जिस ने ब्रह्म ज्ञान को पा लिया है वह पूर्णज्ञानी भी ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति कहलाता है। उस ने अन्य देवों को ज्ञान दिया इस लिए देवताओं का गुरु भी बृहस्पति है। ज्ञान से शुद्ध हुआ पवित्र-चरित्र व्यक्ति इस सर्वोच्च स्थिति का रक्षक है। प्रभुकृपा की बरसती जलधाराएं उस स्थिति की प्रेरक हैं। यजुर्वेद 36.2 में यही कहा है कि मेरे नेत्रों, हृदय तथा मन में जो कोई दोष है छिद्र है उसे भुवनों का स्वामी बृहस्पति दूर कर दे।

(यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पति र्मे तद् दधातु शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः)

तभी व्यक्ति शुद्ध श्विव्र बनेगा। सत्यार्थप्रकाश (समुल्लास 1, पैरा 30) में बृह् बृहि वृद्धौ इन धातुओं से ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति बता कर कहा है जो सब से बड़ा अनन्तबल युक्त परमात्मा है उस ब्रह्म को नमस्कार है।

सत्यार्थप्रकाश (समुल्लास 1, पैरा 26) में यो बृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः, जो बड़ों से भी बड़ा और बड़े बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी है वह परमेश्वर बृहस्पति है।

ओम् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्तऽउत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ 1 ॥
यजु० 35.14

अर्थ–वयं-हम, **उत्**-उत्कृष्ट, **तमसः** - अन्धकार से प्रकृति से, **परि** - परे, **उत्तरम्** – उत्कृष्टतर, **स्वः** -आत्मस्वरूप को, **पश्यन्तः** - देखते हुए, **देवत्रा** - देवों में, **उत्तमम्** - उत्कृष्टतम, **ज्योतिः** - ज्योतिस्वरूप, **देवं** - देव, **सूर्यम्** - सूर्य को, सर्वप्रेरक प्रकाशमान, परमेश्वर को, **अगन्म** प्राप्त हुए हैं

व्याख्या–हम सब ऊपर उठते हुए अन्धकारमयी जड़ प्रकृति से परे उत्कृष्टतर आत्मतत्त्व को देखते हुए फिर उस से आगे उत्कृष्टतम परमात्मज्योति को प्राप्त हुए हैं। प्रकृति ज्ञानशून्य होने के कारण तम है परन्तु निकृष्ट नहीं, उसे भी जानना, उस पर विजय प्राप्त करना ऊपर उठना है। प्रकृति से ऊपर उठकर उत्कृष्टतर आत्मतत्त्व को पहचानना, आत्मज्ञान प्राप्त करना मानव का उद्देश्य है। प्रकृति तो साधन है, साध्य नहीं, प्रकृति में ही लीन हो कर जो लोग सन्तुष्ट हो जाते हैं वे ऊपर नहीं उठ पाते। प्रकृति से ऊपर उठ कर चेतनतत्त्व आत्मतत्त्व को जानना होता है जो उत्कृष्टतर है। आत्मतत्त्व को जानकर अन्तिम लक्ष्य तो उत्कृष्टतम, सच्चिदानन्दरूप, सर्वप्रेरक, सर्वप्रकाशक परमात्मा तक पहुंचना है। प्रकृति के सभी पदार्थ, सृष्टि के सभी जीव, उसी परमसत्ता का संकेत दे रहे है इस बात की चर्चा अगले मन्त्र में की गई है।

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। यह तीन गुणों तम, रज, सत् से युक्त है। हमारा शरीर प्रकृति का अंश है इसलिए यह शरीर (देह, बुद्धि, मन और चित्त का समूह) भी त्रिगुणात्मक है। प्रकृतिजन्य यह शरीर प्राकृत पदार्थों के प्रति आकृष्ट होता हुआ उन्हीं में सुख ढूंढता है। आत्मा तीन गुणों से प्रभावित होती है परन्तु उस का अपना स्वरूप त्रिगुणातीत है। परमात्मा सविता देव त्रिगुणात्मिका प्रकृति में व्याप्त है पर तीनों गुणों से नितान्त अप्रभावित रहता है। आत्मा जब तक तीनों गुणों से प्रभावित रहती है तब तक दु:ख सुख भोगती है। तीन गुणों वाली प्रकृति के तीन प्रकार के भोग हैं–तामस भोग, राजस भोग, सात्त्विक भोग। तामस भोगों से दु:ख होता है, राजस भोगों से सुख भी होता है दु:ख भी होता है, सात्त्विक भोगों से सुख होता है परन्तु परमानन्द तो प्रकृति और उसके तीनों गुणों से मुक्त हो कर आत्मा में अवस्थित होकर आनन्द स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करने पर होता है जो तीनों गुणों से परे है। उस अवस्था में न सुख है न दु:ख केवल आनन्द ही आनन्द होता है। उस अवस्था में पहुंच कर साधक सब प्रकार के भोगों (चाहे वे तामस हों या राजस या सात्त्विक) से ऊपर उठ जाता है। उसे कोई भोग आकृष्ट नहीं करता। उसकी सब धारणाएं (देखने सुनने छूने आदि की शक्तियां) दिव्य हो जाती हैं।

ओम् उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥2॥
यजु० 33.31

अर्थ– त्यं – उस, **जातवेदसम्** – सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, **सूर्यं देवं** –प्रेरक सर्वप्रकाशक देव को, **उ**–ही, **विश्वाय** – सब के प्रति, **दृशे** – दर्शाने के लिए, **केतवः** – ध्वजाएं, **उत् वहन्ति** – ऊपर फहरा रही हैं।

व्याख्या–विद् धातु का अर्थ जानना, प्राप्त करना, विद्यमान होना है। जो सभी उत्पन्न वस्तुओं और जीवों को जानता है वह जातवेदा: है, जो सब के लिए प्राप्तव्य है, जो सब में व्यापक है, वह प्रभु जातवेदा: है। उस परमदेव को सभी को दर्शाने के लिए ही पर्वत, नदियां, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ध्वजाएं बन कर फहर रहे हैं। ध्वजा किसी के शासन की प्रतीक

होती है जिसे देखकर जान लिया जाता है कि वहां का शासक कौन है। परमात्मा का शासन बड़ा सुन्दर सुव्यवस्थित है। उसकी ओर ले जाने वाले मार्ग पर पताकाएं फहरा रही हैं जो उस तक पहुंचने का रास्ता दिखा रही हैं। हम उन पताकाओं के माध्यम से उस मार्ग को पहचानें और क्रमशः ऊपर उठते हुए परमलक्ष्य को प्राप्त करें। इस मार्ग के तीन सोपान हैं। पहली अवस्था में साधक प्रकृति के यथार्थ स्वरूप को जान लेता है वह अवस्था उत् है उस के पश्चात् दूसरी सीढ़ी पर साधक प्रकृति से ऊपर उठकर आत्मतत्त्व को जानता है। प्रकृति तो भोग्य है, जीव भोक्ता है। भोग्य पदार्थों की सार्थकता इसी में है कि उन को साधन बना कर भोक्ता अपना परिष्कार करे, सब जीवों के कल्याण के लिए प्रकृतिरूप साधनों का प्रयोग करे। अन्त में तीसरी सीढ़ी ब्रह्मज्ञान की है जिस के द्वारा उस उत्तम ज्योति ब्रह्म का साक्षात्कार किया जाता है। वेद में प्रकृति या संसार को मिथ्या नहीं कहा है। प्रकृति भी सत् है, वह साध्य नहीं साधन है। ये कलकल बहती नदियां, गहरे सागर, ऊंचे पर्वत, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सब उसी परम सत्ता की ओर संकेत करती हुई पताकाएं हैं, जो उस का पता बता रही हैं। पर हम प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर उसी में लीन होने से परम लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकते। प्रकृति से ऊपर उठकर (उत्तरम् स्वः) साधक को उत्कृष्टतर आत्मा को पहचानना है और फिर आत्मावस्थित होकर उत्कृष्टतम (ज्योतिरुत्तमम्) ज्योतिस्वरूप परमात्मदेव का साक्षात्कार करना है।

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षं सूर्य्यऽ आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥ 3॥

यजु० 7.42

अर्थ–देवानां – देवों (अग्नि, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि) की, **चित्रं** –अद्भुत, **अनीकम्** – सेना, बल, **उत् अगात्** – उदित हुई है। (यह) **मित्रस्य** – मित्र को, **वरुणस्य** – वरुण को (और) **अग्नेः** अग्नि को, **चक्षुः** दिखाने वाली है। (इसने) **द्यावापृथिवी** – द्युलोक, पृथिवीलोक

(तथा) **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्षलोक को, **आ अप्रा** - व्याप्त किया हुआ है। **सूर्यः** - यह सब का प्रेरक, गति देने वाला, उत्पादक ब्रह्म, **जगतः** - जंगम, **तस्थुषश्च** और स्थावर जगत् का **आत्मा** - केन्द्र है। **स्वाहा** - यह शुभ वचन है।

व्याख्या–सन्ध्या के माध्यम से प्रभुभक्ति में मग्न हुआ भक्त जब प्रभु के शासन को दिखाती हुई पताकाओं को देखता है और प्रभुदर्शन के लिए आगे बढ़ता है तो प्रकृति के विभिन्न रूपों में उसे देवों की अद्भुत सेना दिखाई देती है। देवों की यह अद्भुत सेना बता रही है कि इस सेना का सेनापति इस व्यूह रचना के पीछे छिपा है। द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक में वही सर्वत्र व्याप्त है। सविता जड़ और चेतन की आत्मा है। वह प्रभु मित्र है, वरुण है और अग्नि है। ऋग्वेद 1.164.43 तथा अथर्ववेद 9.15.28 में मन्त्र है कि उस एक प्रभु को ज्ञानी जन विभिन्न नामों (जैसे इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि) से पुकारते हैं। वह वरणीय गुणों से युक्त होने के कारण, वरण करने योग्य होने के कारण वरुण है, वह अग्नि के समान पावक, प्रकाशक है, आगे ले जाता है, इसलिए अग्नि है, वह सब का हित सम्पादन करने वाला, दुःख सुख में साथ देने वाला सच्चा मित्र होने से तथा सूर्यवत् प्रकाशक होने के कारण मित्र है। सांसारिक मित्र तो स्वार्थ सिद्ध न होने पर शत्रु बन जाते हैं परन्तु परमात्मा ही एक ऐसा मित्र है जो सम्पूर्ण भावना से अपनाए जाने पर भक्त को कभी नहीं छोड़ता। स्वाहा शब्द के अनेक अर्थ महर्षि दयानन्द ने निरुक्त (8-20) के आधार पर दिए हैं -

सु आह इति वा, स्वा वाक् आह इति वा,
स्वं प्राह इति वा, स्वाहुतं हविः जुहोति इति वा।

अच्छा बोलना– ब्रू-को आह आदेश
(आह आहतुः आहुः)
हु- आह्वाने, हु जुहोति-आहुति देना

मन्त्र के अन्त में साधक कहता है कि मैं तुझ पर सुहुत हूँ, तुझ

पर स्वाहा हो रहा हूँ, तू सब में है, सब तुझ में हैं तेरा रूप किसी एक में सीमित नहीं है। रूप रूप में तू रम रहा है, प्राणी अप्राणी में, जड़ चेतन में, जर्रे जर्रे में तू रम रहा है।

ओं तच्चक्षुर्देवहितम् पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥4॥ यजु० 36.24

अर्थ–तत् - वह, **देवहितं** - देवों का परम हित करने वाला, **शुक्रम्** - शुभ्र तेजोमय (ब्रह्म, सूर्य) **पुरस्तात्** - सामने, **उत् चरत्** - उदय होता हुआ, **चक्षुः** - मार्गदर्शक (है)। **शरदः शतम्** - सौ साल तक, **पश्येम** - हम उसे देखें, (उस की कृपा से) **शरदः शतम्** - सौ साल तक, **जीवेम** हम जीते रहें, **शरदः शतम्** - सौ साल तक, **शृणुयाम** - हम सुनते रहें, **शरदः शतम्** - सौ साल तक, **प्रब्रवाम** - हम बोलते रहें, **शरदः शतम्** - सौ साल तक, **अदीनाः स्याम** - अदीन रहें, च - और **शतात् शरदः** - सौ सालों से, **भूयः** - अधिक (इसी प्रकार अच्छी हालत में रहें)।

व्याख्या - इस मन्त्र का अध्यात्मपरक अर्थ तो यह है कि हम देवों, विद्वानों के परम हितकारक तेजोमय मार्गदर्शक ब्रह्म को अपने ज्ञाननेत्रों से सौ वर्षों तक देखते रहें, सौ वर्षों तक उन ब्रह्म की कृपा से जीते रहें, उनका गुणगान सुनते रहें, उन का गुणगान करते रहें, सौ वर्ष तक हमें किसी के पराधीन न होना पड़े और सौ वर्ष से अधिक भी जीएं तो ऐसे ही जीएं।

सूर्यपरक अर्थ में इस मन्त्र का विनियोग उपनयन संस्कार में भी है जब ब्रह्मचारियों को सूर्यदर्शन कराया जाता है। शतपथ ब्राह्मण में सूर्य को वीर्य का देवता (रेतोदेवता) कहा गया है। ब्रह्मचारी यह प्रार्थना करते हैं कि वह जो सामने उदय होता हुआ ज्योतिर्मय ब्रह्मचर्य मार्ग का उपदेशक सूर्य है, ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए हम इसे सौ वर्ष तक देखते रहें, हम सौ वर्ष तक जीएं, सौ वर्ष तक हमारी श्रवण शक्ति, प्रवचन शक्ति बनी रहे और हम सौ वर्षों तक अदीन हो कर जीएं। अधिक जीएं तो भी इसी प्रकार स्वस्थ और अदीन हो कर जीएं।

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्। **यजुर्वेद 3, 35**

अर्थ–भूः - सत्, **भुवः** - चित्, **स्वः** - आनन्द (वह प्रभु सच्चिदानन्द स्वरूप है) **देवस्य सवितुः** - देव सविता के, **तत्** - उस, **वरेण्यम्** - वरणीय, **भर्गः** - तेज को, **धीमहि** - ध्यान द्वारा हम धारण करें, **यः** - जो (ऐसे सविता देव हैं वे) **नः** - हमारी, **धियः** - बुद्धियों को, धारणाओं को **प्रचोदयात्** - सुप्रेरित करें।

व्याख्या–प्रकृति केवल सत् है, आत्मा सत् और चित् है, परमात्मा सत्, चित् और आनन्द है। सत् का अर्थ है होना, अस्तित्व। प्रकृति का अस्तित्व है किन्तु वह जड़ है उस में चेतना नहीं है आनन्द भी नहीं है। जीवात्मा सत् है उस की सत्ता है और वह चित् भी है, उस में चेतनता है, परमात्मा सत्, चित् होने के साथ-साथ आनन्द भी है। आनन्द की प्राप्ति उस सच्चिदानन्द के साथ मिलने से ही होती है। जड़ प्रकृति से तो अस्थायी सुख ही मिल पाता है। सविता देव का तेज वरणीय है। हम उसे ध्यान द्वारा धारण कर सकते हैं। वही सविता हमारी बुद्धियों को हमारी धारणाओं को प्रेरित करे ताकि हमारी धारणाएं उस के दिव्य तेज से युक्त होकर दिव्य हो जाएं। जैसे अग्नि की भट्टी में गया कोयला भी अग्निरूप हो जाता है। वैसे ही सविता का दिव्य तेज पा कर हमारी धारणाएं, हमारा देखना सुनना सूंघना सब दिव्यता से युक्त हो जाते हैं। जैसे जड़ प्रकृति से बना हमारा शरीर आत्मा के सान्निध्य से चैतन्ययुक्त हो जाता है, शरीर के रग रग में चेतना व्याप जाती है वैसे ही सच्चिदानन्द प्रभु के सान्निध्य में जीवात्मा को अन्दर बाहर सर्वत्र आनन्द की अनुभूति होती है। हम प्रकाशमान ज्योतिस्वरूप प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी बुद्धियों को, धारणाओं को सुप्रेरित करते रहें। सामाजिक क्षेत्र में भी जो ज्योतिर्मय पथ हमारे पूर्वज ऋषियों ने बुद्धि पूर्वक बनाए हैं उन की रक्षा करते रहें। ऋग्वेद के एक मन्त्र (10.53.6) में कहा है–

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुम् अन्विहि
ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्॥

आज हम उन ज्योतिर्मय पथों को, आदर्श और मर्यादा के रास्तों को, ईश्वर भक्ति और सदाचार के धर्माचरण के उज्ज्वल मार्गों को भूल गये हैं। आधुनिकता के नाम पर हमने उच्छृङ्खलता, मर्यादाहीनता, स्वार्थपरता हिंसा से उन प्रशस्त पथों को नष्ट कर दिया है। परिणामस्वरूप हमारा पारिवारिक जीवन भी दु:खमय हो रहा है, व्यभिचार और तलाक का दौर है। कई परिवार इतने टूट गये है कि शायद उनकी मरम्मत करना असम्भव हो रहा है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच इन्द्रियनिग्रह, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान के सुन्दर ज्योतिर्मय पथों को इतना तोड़ दिया है कि जीवन की गाड़ी उन पर चल नहीं पा रही है। पुन: इन आधारों पर ज्योतिर्मय पथों का नया निर्माण करना होगा। आइए, हम सब प्रभु से प्रेरणा लेकर अपनी बुद्धियों को पवित्र कर के उन ज्योतिर्मय पथों की फिर से सुरचना करें। आज आवश्यकता है मिशनरी भावना से ओतप्रोत वैदिक प्रचारकों की जो नयी पीढ़ी में वैदिक विश्वकर्माओं का इन्जीनियरों का निर्माण करें जो राष्ट्र के लिए, विश्व के लिए इन उज्ज्वल राजमार्गों का निर्माण करें।

उपर्युक्त गायत्री मन्त्र के पश्चात् यह समर्पण वचन बोला जाता है–

हे ईश्वर! दयानिधे! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्य: सिद्धिर्भवेन्न:।

अर्थ–हे ईश्वर दयानिधे आप की कृपा से इस जपोपासनादि कर्म से हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि शीघ्र प्राप्त हो।

यह वेदमन्त्र न होकर लौकिक वाक्य है। इसमें पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य बताया गया है।

नमस्कारमन्त्र:

ओं नम: शम्भवाय च मयोभवाय च नम: शङ्कराय च मयस्कराय च नम: शिवाय च शिवतराय च॥ **यजु० 16, 41**

अर्थ– शम् भवाय च – शान्तिस्वरूप के लिए, **नम:** – नमन (है)

मयोभवाय च – आनन्दस्वरूप के लिए, **नमः** – नमन (है) **शम् कराय च** – शान्ति करने वाले के लिए **नमः** – नमन **मयस्कराय च** – आनन्द देने वाले के लिए, **नमः** – नमन **शिवाय शिवतराय च** – मंगलकारी और अधिकाधिक मंगलकारी प्रभु के लिए, **नमः** – नमन (है)

व्याख्या – शम् का अर्थ शान्ति है तथा भू-होना से बने भव का अर्थ है उत्पत्ति स्थान स्रोत। वह प्रभु शान्तिस्वरूप है, शान्ति का स्रोत है। वह केवल स्वयं शान्तिस्वरूप या शान्ति का स्रोत ही नहीं वह भक्तों को भी शान्ति प्रदान करता है, इस लिए वह शम्भव होने के साथ साथ शङ्कर भी है। मयः का अर्थ है सुख, आनन्द। वह प्रभु स्वयं सुखस्वरूप है आनन्दस्वरूप है अतः मयोभव है। वह दूसरों को भी आनन्द देता है, अतः मयस्कर है। वह शिव है, कल्याणकारी है, वह शिवतर है, अधिकाधिक कल्याणकारी है। उस शान्तिस्वरूप आनन्दस्वरूप कल्याणकारी प्रभु को हमारा नमन है। प्रभु के सान्निध्य में हमें जो शान्ति प्राप्त हुई, आनन्द प्राप्त हुआ उस के लिए उस दाता को नमन है। शिवु कल्याणे धातु से इस शिव शब्द की सिद्धि होती है।

सन्ध्या का पद्यानुवाद

1. दिव्य जलों की दिव्य शक्तियां
हम सब का कल्याण करें।
अभिलाषा को पूरी करके
हमें शान्ति का दान करे॥

2. वाणी में माधुर्य तेज हो
प्राणशक्ति सर्वत्र बहे।
नेत्रों में दर्शन शक्ति हो
कर्णों में श्रवण शक्ति रहे॥
नाभिस्थल के शक्ति केन्द्र से
सब अंगों में शक्ति बहे।
हृदय हमारा सबल शान्त हो

कण्ठ मधुर स्वर युक्त रहे॥
सिर पवित्र सद्बुद्धि से हो
बाहों का बल ना पाप करे।
हाथों से हों सत्कर्म सदा
हर अंग काम निष्पाप करे॥

3. जगदीश! बुद्धि को शुद्ध करो
पालक! दृक् शक्ति हो पवित्र।
सुखमय! वाणी को शुद्ध करो
महादेव! हृदय करो पवित्र॥
हे जनक! नाभि को शुद्ध करो
हे तपस्! कदम हर हो पवित्र।
हे सत्यरूप! सद्बुद्धि दो
खं ब्रह्म! सभी कर दो पवित्र।

4. सच्चिदानन्द अरु ब्रह्मरूप
जनक तपस्वी सत्यस्वरूप

5-7. ऋत और सत्य तपस् से निकले
प्रलय निशा भी प्रकट हुई।
प्रकृतिसागर क्षुब्ध हुआ
फिर काल धारणा प्रकट हुई॥
सूर्य चन्द्र दिन रात वशी ने
यथापूर्व ही कर डाले।
द्यु पृथिवी अन्तरिक्ष स्व लोंक
जैसे थे वैसे भर डाले॥

8. अग्नि पूर्व दिशा का स्वामी
विषयों से दूरी है रक्षक।
नमस्कार हम करते सब को
सूर्यरश्मियां प्रेरक दक्षक॥

जो हम सब से द्वेष कर रहा
हम भी जिस से द्वेष करें।
न्याय करो प्रभु आप ही उसका
फिर नहीं मन में द्वेष भरें॥

9. इन्द्र है दक्षिण दिशा का स्वामी
पशुपक्षी दाक्षिण्य रक्षक हैं
नमस्कार हम करते सब को
पितर सभी हैं सत्पथ के प्रेरक दक्षक॥

जो हम सब से द्वेष कर रहा
हम भी जिससे द्वेष करें।
न्याय करो प्रभु आप ही उसका
फिर नहीं मन में द्वेष भरें॥

10. वरुण पश्चिम दिशा का स्वामी
पृथिवी का धन बल है रक्षक,
नमस्कार हम करते सब को
सभी अन्न हैं प्रेरक दक्षक॥
जो हम सबसे द्वेष कर रहा
हम भी जिससे द्वेष करें।
न्याय करो प्रभु आप ही उसका
फिर नहीं मन में द्वेष भरें॥

11. सोम है उत्तर दिशा का स्वामी
क्रियाशीलता का गुण रक्षक।
नमस्कार हम करते सबको
विद्युत् अग्नि प्रेरक दक्षक॥
जो हम सबसे द्वेष कर रहा
हम भी जिससे द्वेष करें।

न्याय करो प्रभु आप ही उसका
फिर नहीं मन में द्वेष भरें॥

12. विष्णु ध्रुवा दिशा का स्वामी
विविध ज्ञान विज्ञान है रक्षक।
नमस्कार हम करते सब को
लता वनस्पतियां प्रेरक दक्षक॥
जो हम सब से द्वेष कर रहा
हम भी जिससे द्वेष करें।
न्याय करो प्रभु आप ही उसका
फिर नहीं मन में द्वेष भरें॥

13. बृहस्पति उर्ध्वादिक् स्वामी
शुद्ध पवित्र चरित्र है रक्षक।
नमस्कार हम करते सबको
वर्षाधारा प्रेरक दक्षक॥
जो हम सब से द्वेष कर रहा
हम भी जिससे द्वेष करें।
न्याय करो प्रभु आप ही उसका
फिर नहीं मन में द्वेष भरें॥

14. तमस् प्रकृति से ऊपर उठ कर
आत्मरूप को जान लिया है।
उत्तम ज्योतिधाम पहुंच कर
ज्ञानामृत का पान किया है॥

15. प्रकृति के सब दृश्य ध्वजा बन
उसी ज्योति की राह दिखाते।
जातवेद के निकट पहुंच कर
अज्ञानी ज्ञानी बन जाते॥

16. उदित हुई यह अद्‌भुत सेना
सेनापति प्रभु को बतलाती।
द्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष में
वही व्याप्त है, भान कराती॥
हर वस्तु में रमा हुआ है वह
जड़ चेतन का प्राणरूप है।
मित्र वरुण कई नाम हैं उस के
ओ३म् एक वह विविधरूप है॥

17. देवों का हितकर चक्षु रूप
है उदित सूर्य यह ब्रह्मज्ञान।
सौ वर्ष जियें हम हों अदीन
नित सुनें सुनाएं ब्रह्मज्ञान॥

18. सच्चिदानन्द ओ३म् है रक्षक
वरने योग्य तेज सविता का।
धारण करें उसे हृदयों में
सन्मति दे वह तेज पिता का॥

19. मङ्गलमय प्रभु को नमस्कार
आनन्दरूप को नमस्कार
सुखकर ईश्वर को नमस्कार
उस शिव शिवतर को नमस्कार

आर्यसमाज स्थापना का उद्देश्य

१. महर्षि दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज स्थापना का प्रथम उद्देश्य था, 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' अर्थात् सारे विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाना एवं उत्तम मानवों का निर्माण करना।

२. दूसरा उद्देश्य था, वेद को विश्वधर्म बनाना तथा भारतीय एवं विदेशी स्वार्थी विद्वानों द्वारा वेदों पर लगाए गये लांछनों को दूर करना, यथा वेदों में प्रकृति पूजा, देवता पूजा, वेदों में इतिहास, बलिदान, अश्लीलता आदि विचारों का खण्डन कर संस्कृत तथा संस्कृत साहित्य का प्रसार करना।

३. तीसरा उद्देश्य था, भारत के तमाम मत-मतान्तरों को परिष्कृत कर, एक सत्य, सनातन, वैदिक धर्म की स्थापना करना तथा सब मनुष्यों को एक ओ३म् के झण्डे तले लाना, एक धर्म, एक भाषा, एक ईश्वर पूजा की स्थापना करना एवं नास्तिकता का नाश करना।

४. भारतीय संस्कृति व सभ्यता का प्रचार प्रसार कर अन्धविश्वास और कुरीतियों का नाश करना।

५. गोपालन करना, अनाथों, असहायों, निर्बलों, विधवाओं की रक्षा करना।

६. स्त्रियों, अछूतों की परतन्त्रता दूर करना तथा बिछुड़े भाइयों को पुनः छाती से लगाना।

७. सुराज्य, स्वराज्य की स्थापना कर, चक्रवर्ती राज्य की ओर अग्रसर होना, सार्वभौमिक संविधान द्वारा सारे संसार का उपकार करना तथा शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक उन्नति करना।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना।

९. वैदिक साम्यवाद की स्थापना करना, जिस से सब लोगों को रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, औष, भगवद्भक्ति का समान अधिकार हो। अज्ञान, अन्याय और अभाव का सर्वथा विनाश हो।

आप भी परिवार, समाज व राष्ट्र की सुख समृद्धि व शान्ति तथा जन सेवा के लिए अपने निकट के आर्य समाज के साथ अवश्य जुड़ें।

भारतभूषण आर्य

प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, जम्मू कश्मीर

महर्षि दयानन्द के बारे में महापुरुषों के कथन

- स्वामी दयानन्द स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा और हिन्दू जाति के रक्षक थे।

–वीर सावरकर

- जब स्वराज्य मन्दिर बनेगा उसमें बड़े-बड़े नेताओं की मूर्तियां लगेंगी तो सबसे ऊंची मूर्ति दयानन्द की होगी।

– श्रीमती ऐनी बेसेन्ट

- स्वामी दयानन्द हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों, सुधारकों, श्रेष्ठ पुरुषों में अग्रणी थे उनका ब्रह्मचर्य, विचारस्वातन्त्र्य, स्वराज्य, सबके प्रति प्रेम, कार्यकुशलता आदि गुण लोगों को मुग्ध करते थे।

–महात्मा गांधी

- गांधी राष्ट्रपिता हैं तो दयानन्द राष्ट्रपितामह हैं।

–प्रथम लोकसभा अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगर

- महर्षि दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में थे जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया। हिन्दू समाज का उद्धार करने में आर्यसमाज का बहुत बड़ा हाथ है। आर्यसमाज की समता और कोई समाज नहीं कर सकता।

–नेता जी सुभाष चन्द्र बोस

- मेरा सादर प्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को जिन्होंने भारतवर्ष को, अविद्या, आलस्य और अज्ञान से मुक्त कराकर सत्य और पवित्रता की जागृति में ला खड़ा किया।

–रवीन्द्र नाथ टैगोर

- महर्षि मेरे गुरु हैं। गुरुदेव द्वारा रचित ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश मेरे जीवन में प्रकाश देने वाले सूर्य के समान है।

– लाला लाजपत राय